Anusanadhan: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Volume 6, Issue 1&2 - 2021, Pg. No. 1-4
Peer Reviewed Journal

Research Article

गीता मनोविज्ञान एक समालोचनात्मक दृष्टि

सचिन कुमार[1], अलका देवी[2]

[1]अध्यक्ष, योग–षट्कर्म चिकित्सा एवं अनुसंधान केन्द्र, पतंजलि आयुर्वेद हॉस्पिटल, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत।
[2]योग प्रषिक्षिका, दि विजडम ग्लोबल स्कूल, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत।

DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202101

I N F O

E-mail Id:
drsachin51@gmail.com
Orcid Id:
https://orcid.org/0000-0003-3936-1770

Date of Submission: 2021-04-28
Date of Acceptance: 2021-05-18

सारांश

मनीषियों, दार्शनिको, सन्तों और गुरुओं ने इस संसार को दुःख रूप माना है। सामान्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत नहीं होता, किन्तु महर्षि पतंजलि ने इसका समाधान करते हुए अपने ग्रन्थ योगसूत्र में "दुःख मेव सर्वं विवेकिनः" कहकर बताया है कि– संसार में विवेकी मनुष्य को ही दुःख दिखाई देता है। सांसारिक मनुष्य इस संसार में संघर्ष करता हुआ सुख प्राप्त करने का प्रयास करता रहता है। इसका कारण उसका संशयात्मक मन है। गीता मन की संशयात्मक स्थिति का निवारण आसानी से कर देती है। गीता में मन के विज्ञान को व्यवहारिक मनोविज्ञान के रूप में वर्णित किया है। गीता में मन के विषय में गवेषणात्मक तथ्यों को देखकर सिद्ध होता है कि– गीता एक मनोवैज्ञानिक शास्त्र है। गीता में जिन तथ्यों की आधुनिक विवेचना की गई है वे आधुनिक मनोविज्ञान में प्राप्त नही होते हैं। गीता के मनोविज्ञान में अभिक्रम की अनक्ष्वरता को माना गया है। अर्थात कर्म का संस्कार आगे के जन्मों मे भी बना रहता है गीता का मानना है कि– यदि संसार से या दुःखों से दूर होना है तो मन को निस्त्रैगुण्य करना पड़ेगा गीता कर्म से बुद्धि की श्रेष्ठता को स्वीकार करती है। साथ ही केवल शास्त्राभ्यास करना निरर्थक मानती है। गीता में साधना पक्ष के ऊपर बल दिया गया है। किन्तु वहाँ भी वह संसार का त्याग करना स्वीकार नहीं करती बल्कि "युक्त आहार विहार"का पालन करते हुए कर्म करते हुए मन से ऊपर उठने की बात कहती है।

मुख्य बिन्दुः गीता, मनोविज्ञान, प्राण ऊर्जा, मन का नियन्त्रण, युक्त आहार–विहार

प्रस्तावना

चिन्तन करके देखा जाये तो संसार यात्रा विषाद पूर्ण है। गुरु नानक भी कहते हैं– 'नानक दुखिया सब संसार' अर्थात् संसार में सर्वत्र दुःख है। महात्मा बुद्ध भी कहते हैं 'सर्वम् दुःखम्' अर्थात् संसार में सब कुछ दुःख रूप है। सामान्य दृष्टि से देखने पर संसार दुःख रूप दिखायी नहीं देता, बल्कि यहाँ तो भोग साधनों में बड़ा सुख प्रतीत होता है। इसका समाधान महर्षि पतंजलि योगसूत्र में करते हुए कहते हैं कि– इस संसार में विवेकी मनुष्य को ही दुःख दिखाई देता है।[1] जो दुःख भोग लिया गया वह तो बीत गया, किन्तु जो दुःख अनागत है अर्थात् अभी नही आया है उसको योग दर्शन त्यागने का निर्देश देता है।[2] किन्तु सांसारिक मनुष्य दुःख को त्यागने की अपेक्षा इस संसार में सुख प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता रहता है। इस सबका कारण है संशयात्मक मन। सांसारिक मनुष्य के मन में सुख–दुःख को प्राप्त करने और छोड़ने का संग्राम चलता रहता है। गीता मन के इस संशय को सरलता से दूर कर देती है। गीता में अर्जुन सांसारिक जीवन का प्रतीक है। उसके अन्तःस्थल में स्व और संसार का संग्राम निरन्तर चलता रहता है। अर्जुन के इस द्वन्द्व को गीता में कृष्ण मन के विज्ञान को समझाते हुए सरलता से समाप्त कर देते हैं। गीता में मनोविज्ञान को व्यावहारिक मनोविज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मन अथवा अन्तःकरण के कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक तथ्य गीता में वर्णित किये गये हैं। मन के विषय में इतने गवेषणात्मक तथ्यों को देखकर यह बात सिद्ध हो जाती है कि– गीता एक मनोवैज्ञानिक शास्त्र है। गीता में जिन तथ्यों का विवेचन किया गया है वैसा विवेचन न तो आधुनिक मनोविज्ञान में प्राप्त होता है, और न ही अन्य किसी मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ में। जिन लोगों ने गीता के अमरत्व को जान लिया है वे ही गीता के

Copyright (c) 2021: Advanced Research Publications

मनोवैज्ञानिक महत्व को समझ सकते हैं। प्रायः साधारण विद्वान इन तथ्यों से अपरिचित ही रहते हैं। गीता के समग्र मनोवैज्ञानिक तथ्यों के स्वरूप को जानना तो सम्भव नहीं है किन्तु प्रसंगवश उनमें से कुछ तथ्यों की व्याख्या के द्वारा गीता के मनोविज्ञान को समझा जा सकता हैं।

आश्चर्यात्मक मन

आधुनिक मनोविज्ञान की पहुँच मन से आगे नहीं है। पंचभूतों से प्रारम्भ करके उनका अनुसन्धान मन के ऊपर जाकर समाप्त हो जाता है। वे कहते हैं कि– मन प्रकृति की सबसे सूक्ष्म और अन्तिम रचना है। आत्मा नाम की कोई वस्तु हमें ज्ञात नहीं होती।[3] अर्थात् आत्मा की सत्ता को आधुनिक मनोविज्ञान स्वीकार नहीं करता। वह मन को ही कर्ता एवं भोक्ता मानता है।[4] आधुनिक मनोवैज्ञानिक विद्वान यह जानने की कोशिश नहीं करते कि मन की उर्जा का स्रोत क्या है। मन को उर्जा कहाँ से मिलती है। मनुष्य के अन्दर निहित अन्तःकरण एक उपकरण मात्र ही तो है। मन एक साधन है। प्रकृति जन्य होने के कारण वह जड़ रूप है।[5] श्रीमद्भगवद् गीता कहती है कि– मन के द्वारा जो चिन्तन और मनन की प्रक्रिया की जाती है यह योग्यता उसकी अपनी नहीं है। इसे वह चेतन आत्मा से प्राप्त हुई है। किन्तु आत्मा चेतन होते हुए भी प्रक्रियाओं में भाग नहीं लेता उनका माध्यम मन ही है। मन और आत्मा के संयोग से जो क्रिया सम्पन्न होती है उसे ही हम पुरूषार्थ, भोग, व्यवहार और संसार के रुप में देखते हैं।[6] गीता मन के साथ आत्मा के संयोग को स्वीकार करती है और आत्म तत्व को उर्जा के रूप में परिभाषित भी करती है किन्तु साथ ही साथ ये भी स्वीकार करती है कि आत्मा की व्याख्या नहीं की जा सकती।[7] भारतीय दर्शन, वेद और उपनिषद आत्मा की व्याख्या नेति–नेति के द्वारा करते हैं।[8]

नेति–नेति का अभिप्राय यह है कि–आत्मा क्या है? वह कैसा है? कहाँ रहता है? क्या करता है? किस आकार का है?– इसकी व्याख्या करने में स्वयं को सभी असमर्थ पाते हैं। शास्त्र कहते हैं–आत्मा शरीर नहीं, पंचभूत भी आत्मा नहीं हैं, प्राणों का नाम भी आत्मा नहीं है, इन्द्रियाँ भी आत्मा नहीं हैं, विज्ञान भी आत्मा नहीं हैं, सुनने वाला, देखने वाला, चलने वाला, चिन्तन करने वाला और मनन करने वाला तत्व भी आत्मा नहीं है। इन सबके पश्चात जो शेष रह जाता है वही आत्मा है।[9]

गीता में आत्मा के विषय में वर्णन करते हुये भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– आत्मा एक आश्चर्य है, जो इसको देखता है वह भी कहता है कि इसका दर्शन आश्चर्य है। जो इसकी व्याख्या करता है वह भी आष्चर्य मानकर ही व्याख्या करता है। इसकी व्याख्या को सुनने वाला जो श्रोता है वह भी आश्चर्य से इसे सुनता है। किन्तु यह भी एक आश्चर्य है कि इसको देखकर सुनकर और इसकी व्याख्या के बाद भी कोई इसको जान नहीं पाता।[10] आधुनिक मनोविज्ञान के विद्वान, ऐसी किसी वस्तु को नहीं मानते जिसको तथ्यों के आधार पर प्रमाणित न किया जा सके। उनकी दृष्टि में सत्य और प्रमाणिक वही है जिसको प्रयोगशाला में बैठकर प्रमाणित किया जा सके। अज्ञात, अश्रुत, अत्याख्येय और अपरिमेय जैसी आश्चर्यजनक वस्तु का अस्तित्व वे स्वीकार नहीं करते।

भारतीय मनोविज्ञान की ही ये विशेषता है कि– वह आत्मा को आश्यर्चवान कहकर उसकी व्याख्या करता है। उसका इतना ही तर्क है कि– कोई भी उपकरण बिना किसी चेतन तत्व की प्रेरणा के काम नहीं कर सकता। मन भी एक उपकरण है, उसको प्रेरित करने वाला कोई तत्व अवश्य होना चहिए। गीता उसी तत्व को आत्मा कहती है। मन का नाश हो सकता है किन्तु आत्मा अनश्वर है। देह नश्वर है किन्तु देही आबद्व है।[11]

सम्भावित पुरूष का आचरण

गीता के मनोविज्ञान की दूसरी विशेषता और भी अधिक महत्वपूर्ण है। गीता कहती है कि–अपकीर्ति मुत्यु से भी अधिक कष्टकारी होती है। किन्तु अपयश या अपकीर्ति सबके लिए कष्टकारी नहीं होती, अपितु सम्भावित पुरूष के लिए ही मुत्यु से अधिक कष्टकारी होती है। यह सम्भावित पुरूष क्या है? इसकी व्याख्या आधुनिक मनोविज्ञान में प्राप्त नहीं होती। इसका वर्णन भी गीता के अर्न्तगत ही किया गया है। साधारण पुरूषदेह की मृत्यु को ही अधिक कष्टकारी मानते हैं। धन की चोरी करना, अपने चरित्र को कलंकित करना, युद्व से पलायन करके अथवा सैकड़ों अपयशों का कलंक लगवा कर भी वें जीना चाहते हैं। अर्थात् जीवन के प्रति मोह को नहीं त्याग पाते। ऐसे पुरूष सम्भावित पुरूष नहीं होते, सम्भावित वें पुरूष होते हैं जो सम्मान से विष का भी गरल कर लें और अपमानपूर्वक दिये गये अमृत का भी त्याग कर दें। ऐसे पुरूष घास की रोटी खाकर जीवित रह सकते हैं, वृक्ष के नीचे पृथ्वी को बिछौना मानकर रात बिता सकते हैं, भूखा रहकर शरीर को कृश कर सकते हैं, किन्तु अपमान और अपयश सहकर एक भी पल जीना जिनके लिए मृत्यु के समान कष्टकारी हो। महाराज दिलीप सम्भावित पुरूष थे जिन्होंने नन्दनी के प्राणों की रक्षा के लिए अपना राज्य अपनी युवावस्था और अपना सुन्दर शरीर तक सिंह के सामने प्रस्तुत कर दिया था।[12] महाराज शिवि रन्तिदेव सम्भावित पुरूष थे जिन्होंने अपने वचन की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने मे भी एक पल नहीं लगाया।[13] तेजस्वी वर्चस्वी और यशस्वी पुरूष को सम्भावित कहते हैं। उन्हें सम्भावित इसलिए कहते हैं क्योंकि संसार उनके चरित्र में अनन्त उर्जा की सम्भावना देखता है। संसार में यह सम्भावना प्रसिद्ध थी कि अर्जुन न कभी दीनता दिखायेगा और न कभी युद्ध से पलायन करेगा। जब लोग यह सुनेंगे कि अर्जुन ने अपने कर्तव्य का पालन न करके युद्ध भूमि छोड़ दी तो क्या उस अपयश को अर्जुन जैसा सम्भावित पुरूष सह पायेगा? एक वीर योद्धा बाणों का घाव सह सकता है, किसी बरछी का घाव शरीर पर सह सकता है, हजारों बिच्छुओं के डंक को भी सहकर एक आह मुख से ना निकले, परन्तु यह कभी सहन नहीं करेगा कि लोग उसके विषय में यह कहें कि अर्जुन बड़ा कायर निकला, हम उसे क्या समझते थे और वह क्या निकला। यही बात भगवान श्री कृष्ण कह रहे हैं कि– हे अर्जुन अपकीर्ति का कष्ट सम्भावित पुरूष के लिए मृत्यु से अधिक घातक सिद्ध होता है।[14] यह मनोवैज्ञानिक तथ्य आधुनिक मनोविज्ञान का आदर्श नहीं है। आधुनिक मनोविज्ञान साधारण पुरूष के मन की व्याख्या तो कर सकता है किन्तु सम्भावित पुरूष के मन की हिमालय जैसी ऊँचाई को और समुद्र की तरह गहराई को नापने का उसके पास कोई पैमाना नही है।

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202101

अभिक्रम की अनश्वरता

गीता में कुछ ऐसे विशिष्ट मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रतिपादित किये गये हैं जिनकी ओर आधुनिक मनोविज्ञान के विद्धानों का ध्यान नहीं जाता। प्रायः आधुनिक मनोवैज्ञानिक यह मान्यता रखते हैं कि किये हुये कर्म कुछ काल के पश्चात नष्ट हो जाते हैं। फल देने के पश्चात उन कर्मों के संस्कारों का भी नाश हो जाता है। किन्तु योग साधना के विषय में यह नियम चरितार्थ नहीं होता। भगवान ने गीता में स्पष्ट घोषणा की है कि– यदि किसी मनुष्य ने थोड़ी सी भी योग साधना का अभ्यास किया है तो उस साधना का फल अनेक जन्मों के बाद भी नष्ट नहीं होता, आगामी जन्मों में जब व्यक्ति योग साधना का आरम्भ करेगा तो उसकी वही योग साधना वहीं से प्रारम्भ होगी जहाँ से उसने छोड़ी थी। यदि योग साधना करते हुए योगी साधक की मृत्यु हो गयी है तो अगले जन्म में अथवा उसके भी आगे के जन्मों में काल का व्यवधान होने पर भी वह योग साधना के संस्कार नष्ट नहीं होते।[15] उपर्युक्त शब्दों में भगवान कृष्ण ने स्पष्ट निर्देश किया है कि– योग के मार्ग पर बढाया हुआ एक कदम भी आगामी जन्मों में भय से रक्षा कर लेता है। क्योंकि योग के अभिक्रम का नाश नहीं होता। अनन्तकाल का व्यवधान भी योग के एक अंष को नष्ट नहीं कर सकता। गीता के मनोविज्ञान का यह एक विशिष्ट पहलू है।

निस्त्रैगुण्य होना

आधुनिक मनोविज्ञान के विद्धान भी सत्व, रजस और तमस के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। यह सम्पूर्ण संसार इन्हीं तीनों गुणों से मिलकर बना है। इसलिए इस जगत को त्रिगुणात्मक माना जाता है। मन भी प्रकृतिजन्य होने के कारण त्रिगुणात्मक है। इसलिए मन के सोचने और विचारने का आधार भी त्रिगुणात्मक ही है। साधारण विद्धान तीनों गुणों से ऊपर नहीं सोच पाते किन्तु गीता का मनोविज्ञान साधारण मनोविज्ञान से बहुत ऊपर है। प्रायः वेद के विद्धान भी चित्त की त्रिगुणात्मक वृत्तियों से ऊपर नहीं उठ पाते किन्तु गीता ने पहली बार यह कहने का साहस किया कि मनुष्य इस त्रिगुणात्मकता से ऊपर है। जहाँ–जहाँ इन तीनों गुणों का विस्तार है वहाँ–वहाँ माया बन्धन है और जहाँ–जहाँ माया का बन्धन है, वहाँ–वहाँ काम–क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा असंतोष, भय आदि दुःखों की सत्ता है भगवान कृष्ण भी अर्जुन से यही कह रहे हैं कि– हे अर्जुन! वेद भी त्रिगुणात्मक है। वेद के ज्ञान से भी मुक्ति सम्भव नहीं है। यदि दुःखों से मुक्ति चहिए तो तुझे निस्त्रैगुण्य होना पड़ेगा।[16]

गीता के इस वचन को सुनकर भले ही वेदों के विद्धान क्रुद्ध हो जायें किन्तु गीता ने अपने मत को स्पष्ट करने में संकोच नहीं किया। गीता का अकाट्य तर्क यह है कि– प्राणी तीनों गुणों से बंधे हुए हैं। यदि मनुष्य भी इनसे बंध जाये तो मनुष्य और पशुओं में क्या अन्तर रह जायेगा। विशिष्ट पुरूष वही है जो त्रिगुण के इस बन्धन से उठकर निस्त्रैगुण्य हो जाये। किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान के जानकार इस तथ्य या तर्क को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि– चुँकि: मन त्रिगुण से बंधा है इसलिए वह निस्त्रैगुण्य हो ही नहीं सकता। गीता कहती है कि–हाँ निस्त्रैगुण्य होना अत्यन्त कठिन तो है किन्तु असम्भव नहीं है। गीता की योग साधना मनुष्य को निस्त्रैगुण्य बनाने मे समर्थ है।

कर्म से बुद्धि की श्रेष्ठता

आधुनिक मनोविज्ञान के विद्धान प्रायः नास्तिक होते है। ईश्वर, पुर्नजन्म, स्वर्ग, नरक, मोक्ष आदि में उनका विश्वास नहीं होता। उनकी मान्यता है कि– संसार कर्म प्रधान है। स्वयं तुलसी दास ने भी कहा है कि– कर्म प्रधान विश्व रचि राखा का करि तरहा बठई वे साधा।[17] कर्म वादियों की यह दृढ मान्यता है कि यदि मनुष्य कर्म करे तो वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है। किन्तु गीता इस मान्यता से उपर उठकर विचार करती है। यह ठीक है कि संसार कर्म प्रधान है किन्तु कर्म बुद्धि से श्रेष्ठ नहीं है, बुद्धि ही सबसे श्रेष्ठ है। बुद्धि से विचार करके ही शुभ कर्म किये जाते हैं।[18] यूँ तो बुद्धिहीन भी कर्म करते है किन्तु बुद्धिहीन मनुष्य शुभ कर्म नहीं करते। बुद्धि ही मनुष्य को अशुभ कर्मों से हटाकर शुभ कर्मों में प्रवृत्त करती है।[19] कठोपनिषद् में भी बुद्धि की स्थिरता को शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाला बताया है।[20] कर्म का एक दोष यह भी है कि– कर्म नष्वर होता है, फल देने के बाद कर्म का नाश स्वतः हो जाता है। किन्तु गीता कहती है कि बुद्धि का नाश कभी नहीं होता। बुद्धि मोक्ष पर्यन्त बनी रहती है।[21] गीता के इस ज्ञान ने आधुनिक मनोविज्ञान के कर्मवाद का सर्वथा खण्डन किया है। इससे कर्मवादी भी गीता के मत से अरूचि रख सकते हैं किन्तु गीता का मनोविज्ञान इसकी चिन्ता नहीं करता।

शास्त्राभ्यास की निरर्थकता

गीता का स्पष्ट संदेश है कि– वेदादि शास्त्रों का अध्ययन योग साधना में बाधक है। शास्त्रों का अधिक अध्ययन मनुष्य को चतुर, तार्किक और बुद्धिमान बना सकता है। किन्तु वह मनुष्य को सत् पुरूष नहीं बना सकता। योग साधक के लिए शास्त्रों का अध्ययन अनिवार्य नहीं है। गीता का स्पष्ट मत है कि– हे अर्जुन, यदि तुझे मोह माया से दूर रहना है और योग साधना का अभ्यास करना है तो शास्त्रों का अधिक अध्ययन छोड़ना पड़ेगा क्योंकि शास्त्र मनुष्य की बुद्धि को भ्रमित करते हैं।[22] गीता के इन विचारों की आलोचना भी वेदों के विद्धान कर सकते हैं, शास्त्रों का ज्ञान रखने वाले भी गीता के मत से अरूचि रख सकते हैं, किन्तु गीता के मनोविज्ञान की यही तो विशेषता है कि– वह सामान्य मार्ग से हटकर विचार करता है। योग के बहुत से षास्त्रों में योग सिद्धि के लिए आहार का त्याग बताया गया है। किन्तु गीता इस मान्यता का खण्डन करती है। भगवान ने स्पष्ट कहा है कि योग साधक को निराहार नहीं रहना चहिए। गीता में युक्ताहार–विहारस्य की बात कही गयी है।[23] किन्तु निराहारता की बात कहीं भी नहीं कही गई है। भगवान कहते हैं कि–आहार छोड़ देने से कुछ समय के लिए विषयों की निवृत्ति भले ही हो जाये किन्तु विषयों का रस स्थायी बना रहता है बलात् भोजन का त्याग कर देने से मन सदैव भोजन के विषय में ही सोचता रहेगा, भूखे पेट भजन कभी नहीं होता। गीता के इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से भी बहुत लोग रूचि नहीं रखते होंगे। किन्तु गीता मुख्य रूप से योग मनोविज्ञान का ग्रन्थ है, उसकी बात पर अविश्वास और अश्रद्धा रखने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

स्वयं भोजन करना पाप है

गीता में एक अन्य विशिष्ट मनोवैज्ञानिक पहलू की ओर इंगित किया

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202101

है। जिसको दूसरे मनोवैज्ञानिक प्रायः उपेक्षित कर देते हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिक विद्वानों का मत है कि– मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है, वह केवल अपने सुख के लिए चेष्टा करता है, उसकी जितनी भी क्रियायें हैं वे सब स्वार्थ केन्द्रित हैं।[24] किन्तु गीता के मनोविज्ञान की दृष्टि अत्यन्त व्यापक और परोपकार केन्द्रित है। गीता कहती है कि– अपने लिए तो सभी जीते हैं, पशु–पक्षी भी अपना पेट भर लेते हैं किन्तु मनुष्य की विशेषता यह होनी चहिए कि–वह केवल अपने विषय में न सोचकर दूसरों के विषय में भी सोचे। गीता की स्पष्ट मान्यता है कि– जो मनुष्य केवल अपने लिए भोजन पकाते हैं और खाते हैं। वे वास्तव में भोजन नहीं खाते अपितु पाप खाते हैं।[25]

उपसंहार

जैसा हम शोध पत्र में बता चुके हैं कि गीता केवल एक योग शास्त्र ही नहीं अपितु वह मनोविज्ञान शास्त्र भी है। जहाँ गीता एक ओर योग के विभिन्न मार्गों कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग आदि की चर्चा करती है वहीं वह मानव मन की चर्चा करती है वह मानव मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्तियों (स्थितियों) का भी वर्णन करती है। साथ ही गीता व्यवहारिक मनोविज्ञान के तथ्यों पर आधारित ग्रन्थ है। वह केवल सैद्धान्तिक मनोविज्ञान की चर्चा नहीं करती बल्कि उसको इस स्तर पर लाती है जहाँ पर उसको व्यवहार में पालन करते हुए जीवन में धारण किया जा सकता है। जबकि आधुनिक मनोविज्ञान इसका स्पर्श भी नहीं कर पाता। गीता में मन की विकृत अवस्था क्या है, और उसको कैसे दूर किया जा सकता है। इन सब बातों का समाधान गीता बड़े ही सुन्दर रुप में करती है। मन की त्रिगुणात्मक स्थिति क्या है, जो दुःखों या बन्धन का कारण है। और मन की इस त्रिगुणात्मक स्थिति को किस प्रकार निस्त्रैगुण्य करने के उपरान्त मुक्ति को प्राप्त किया जा सकता है वह भी बड़े सरल शब्दों में समझाती है। यहाँ पर उल्लेखित पहलू तो केवल दिशा मात्र है गीता के मनोविज्ञान के उपर तो यदि पृथक रूप से शोध कार्य किया जा सके तो वह मानव कल्याणार्थ एक अत्यन्त उपयोगी कार्य होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. दुःखमेव सर्वं विवेकिनः। पा0 यो0 सू0– 2/15।
2. हेयं दुःखमनागतम्। पा0 यो0 सू0– 2/16।
3. Gregory RL. Mind in Science, P- 484.
4. Hunt M – PP. 81-82.
5. Chennakesavan S. Concept of mind in Indian Philosophy P- 31.
6. श्रीमद्भगवद्गीता–13/31।
7. श्रीमद्भगवद्गीताा–2/25।
8. बृह0उप0–4/2/4।
9. कठोप निषद–1/3/12।
10. श्रीमद्भगवद्गीता–2/29।
11. श्रीमद्भगवद्गीता–2/30।
12. रघुवंष महाकाव्य – द्वितीय सर्ग– अध्याय पृ0–197।
11. महाभारत (वन पर्व) तीर्थ यात्रा पर्व– श्लोक–1/12।
14. श्रीमद्भगवद्गीता–2/34/37।
15. श्रीमद्भगवद्गीता–2/40।
16. त्रैगुण्या विषया वेदा निस्त्रै गुण्यो भवार्जुन। र्निद्वन्द्वौ नित्यसत्त वस्थो नियोगक्षेम आत्मवान।। गीता–2/45।
17. रामचरितमानस, मौसल पर्व : अष्टम अध्याय श्लोक–20/27।
18. श्रीमद्भगवद्गीता–4/33।
19. श्रीमद्भगवद्गीता–2/50।
20. यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिष्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।। कठोपनिषद्–2/3/10।
21. श्रीमद्भगवद्गीता–2/51/52।
22. श्रीमद्भगवद्गीता–2/53।
23. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।श्रीमद्भगवद्गीता–गीता–6/17।
24. Leviathan – 1651. Thomas Hobbes.
25. श्रीमद्भगवद्गीता–7/13।

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202101